THE ECONOMIC TIMES

Date: 25-09-26

# Need to Repair the Nirvachan Vachan

*Three questions that need to be answered*

**ET Editorial**

Set up in 1950, Election Commission has, over the decades, earned a reputation as one of India's most credible and trusted institutions. This week, that credibility has come under severe strain. An Indian Express investigation has revealed an unprecedented internal rift within the 3-member EC, with commissioners Sukhbir Singh Sandhu and Vivek Joshi recording at least 14 objections in 10 mths to decisions taken under chief commissioner Gyanesh Kumar. The report raises three questions that go beyond SIR. Who is taking key decisions? Who controls the electoral roll? Under what authority are consequential changes being made?

EC is not just another public institution where differences can be settled behind closed doors. It is the constitutional authority entrusted with the integrity of the electoral process — and, ultimately, with ensuring that eligible citizens can exercise their right to vote. The significance lies not in whether every objection raised by the two ECs is found to be valid. Institutions can, and should, have differences of opinion. Indeed, EC has stated that differing views are a normal part of institutional decision-making, and that all decisions were unanimous. But that response sidesteps some core issues. It had not publicly shared the existence of these memos. Neither had it explained who authorised changes to Form 6, who directed filing of the SIR deletion appeals in West Bengal, or why Goa EROs were unable to amend electoral rolls.

Cleaning up electoral rolls is a legitimate and necessary exercise. But the legitimacy of the exercise depends as much on the process as on its objective. Excluding an eligible voter — when EC has maintained that its aim is to ensure that no voter is left out — cannot be treated as an administrative snafu. EC now needs to do more than deny a rift. It must answer the questions raised. Ultimately, if these allegations of procedural bypass and unauthorised directives are found to be true, someone will have to take responsibility for the erosion of public trust for it to be restored.

THE HINDU

Date: 25-09-26

# A nation's song

*Vande Mataram's rendition must be in the spirit of "unity in diversity"*

**Editorial**

Patriotism is not just reverence for a territory or a flag but is the embodiment of solidarity with fellow citizens in a nation-state. The idea of a nation as a bond transcends family, community or faith, uniting citizens through common values and a pursuit of prosperity. National symbols and anthems exist to hone that bond. When they are changed or modified to compel citizens to accept a majoritarian version, their purpose is defeated. India's freedom fighting generation understood this. Which is why, in 1937, the Congress Working Committee resolved that only the first two stanzas of Bankim Chatterjee's Vande Mataram should be sung at national gatherings, since the later stanzas invoke the motherland as Hindu deities. When Jana Gana Mana was adopted as the National Anthem on January 24, 1950, India's first President Rajendra Prasad said that Vande Mataram, even though there is no mention of a "national song" in the Constitution, would be "honoured equally". Since then, the two-stanza version has allowed citizens of all faiths to partake in a song that stirred the freedom struggle and popularised by artistes such as Lata Mangeshkar and A.R. Rahman.

In the last year or so, the BJP-led Union government has sought to unsettle this inclusive compact. Since the song's 150th anniversary in 2025, it has pushed for all six stanzas to be recited. The Ministry of Home Affairs (MHA) issued directions and circulars in 2026 and Parliament passed the Prevention of Insults to National Honour (Amendment) Act, 2026 with little debate — actions that are in line with the BJP's habit of imposing uniformity and majoritarian preference on all citizens. The amendment extends Section 3 of the 1971 Act, which punishes anyone who intentionally prevents the singing of the National Anthem or disturbs an assembly engaged in such singing, to the National Song. Per se it does not compel anyone to sing or define the National Song or its stanzas. But read alongside the MHA orders, which prescribe an official version of all six stanzas, mandate mass singing at public functions, and place the song before the anthem, it amounts to compulsion, as a petition by T.M. Krishna in the Supreme Court has argued. The Court has rightly observed that the state may decide what the National Song is, but cannot penalise conscientious objectors in line with Bijoe Emmanuel (1986). This judgment held that no law obliges anyone to sing the Anthem, standing in respectful silence is no offence and executive instructions without statutory backing cannot curtail fundamental rights. The Court must apply Bijoe Emmanuel in full, set aside the MHA's orders and make it clear that silence cannot be read as "disturbance". By reverting to the vision of the freedom generation, the Court will do justice to the idea of unity in diversity.

दैनिक भास्कर

Date: 25-09-26

# आरोपों के बीच चुनाव प्रक्रिया की पारदर्शिता पर सवाल

**संपादकीय**

संसदीय लोकतंत्र में गवर्नेस के राजनीतिक किरदार कौन बनेंगे, इसका फैसला जनता वोट से करती है। इस प्रक्रिया को निर्दोष ढंग से अंजाम देने का जिम्मा निर्वाचन आयोग का है। भारत में वर्तमान में आयोग एक सीईसी और दो ईसी को मिलाकर बनता है। अगर 10 माह में 14 बार इन तीन में से दो सदस्य आयोग के काम करने के तरीके पर प्रश्न खड़ा करें और बगैर सहमति के फैसला लेने का आरोप लगाएं तो जनता के मन में पूरी चुनाव प्रक्रिया के निर्दोष होने पर अविश्वास तो पैदा होगा ही। आयोग का जवाब है कि फैसले सहमति से होते हैं, लेकिन वह भूल गया कि अन्य दोनों आयुक्त कैबिनेट सचिव को भी अपनी चिंता बताते रहे हैं। आयोग ने आरोपों का खंडन नहीं किया है। मसलन, एक आरोप है कि एसआईआर में उनकी जानकारी के बगैर वोटर्स के नाम जोड़े या हटाए गए। गैर-कानूनी नियम बनाए और और सॉफ्टवेयर कंट्रोल को अपने हाथों में रखा गया। कानून के अनुसार आयोग के फैसले यथासंभव सर्वसम्मति से अन्यथा बहुमत से होने चाहिए। एसआईआर में नाम जोड़ना या हटाना कोई साधारण प्रक्रिया नहीं इससे एक व्यक्ति मताधिकार से वंचित हो जाता है और परोक्ष रूप से उसकी नागरिकता पर सवाल उठते हैं। क्या ऐसी गंभीर प्रक्रिया पर आयुक्तों के बीच ऐसे संगीन आरोप जनता को चुनाव की पवित्रता पर आश्वस्त करेंगे ?

---

Date: 25-09-26

# घटता जा रहा है अमेरिका का कद

**निकोलस क्रिस्टोफ, ( लेखक न्यूयार्क टाइम्स के स्तंभकार हैं )**

चीनी राष्ट्रपति अपने अमेरिकी समकक्ष डोनाल्ड ट्रंप के साथ शिखर वार्ता के लिए अमेरिका पहुंच चुके हैं। उनकी अगवानी के लिए ट्रंप स्वयं पहुंचे। वाशिंगटन पहुंचने की तैयारियों के बीच ही चीनी राष्ट्रपति ने अपने कूटनीतिक रसूख और तेवरों का भरपूर प्रदर्शन किया। अतीत में जब भी चीनी और अमेरिकी शीर्ष नेताओं के बीच शिखर वार्ताएं होती रहीं तो उसमें कूटनीतिक बढ़त हमेशा अमेरिकी राष्ट्रपति के पास हुआ करती थी, मगर

इस बार स्थिति अलग है। यह संभवत: पहला ऐसा चीन-अमेरिका शिखर सम्मेलन होगा, जहां वार्ता की कमान चीनी राष्ट्रपति के पास नजर आए। द्विपक्षीय रिश्तों में यह चौंकाने वाला पहलू ट्रंप के दौर में अमेरिकी कद के कुंद होने का भी परिचायक होगा।

कुछ जानकार मानते हैं कि चिनफिंग के प्रति ट्रंप काफी हद तक नरम रुख अपनाते हैं। जबकि चिनफिंग एक तरह से अमेरिका को ठेंगा दिखाते हुए अपनी ताकत को ही जाहिर करते हैं। ट्रंप के अनुसार मई में चिनफिंग के साथ पिछली बैठक में उन्होंने आग्रह किया था कि प्रख्यात मीडिया टायकून और लोकतंत्र के प्रखर समर्थक जिमी लाई को रिहा कर दिया जाए। चिनफिंग ने इसे ठुकरा दिया। इसके उलट, हांगकांग की एक अदालत ने इसी माह तीन अन्य असंतुष्ट कार्यकर्ताओं को सख्त कारावास की सजा सुनाई। हांगकांग के बेहद चर्चित लोकतंत्र समर्थक आंदोलनकारियों में से एक 29 वर्षीय जोशुआ वोंग भी आजीवन कारावास की आशंका का सामना कर रहे हैं।

उत्तर कोरिया पर लगे प्रतिबंधों की भी चीन सरेआम धज्जियां उड़ाता दिख रहा है। वह धड़ल्ले से ईरानी तेल खरीद रहा है। ईरान को सामरिक मदद पहुंचाकर युद्ध में उसकी मदद करने की भी खबरें हैं। दुर्लभ खनिजों पर कड़े नियंत्रणों को औपचारिक रूप से स्थगित करने के बावजूद चीन उन पर ऐसी पकड़ बनाए हुए है, जिससे पश्चिमी कंपनियों के सामने लगातार मुश्किलें बनी हुई हैं। जुलाई में ईरानी हमले में तीन अमेरिकी सैनिकों की हत्या में चीनी खुफिया जानकारी से मिली मदद की बात सामने आने के मुद्दे से जुड़े सवालों के मामले में भी ट्रंप का रवैया उदासीन रहा और अपने व्यक्तित्व के उलट उन्होंने खामोशी को ही तरजीह दी। उलटे उन्होंने इसमें चीन की किसी भी संदिग्ध भूमिका को खारिज ही किया।

देखा जाए तो अमेरिका के साथ रिश्तों में चिनफिंग का पलड़ा इसलिए भी भारी है, क्योंकि दुर्लभ खनिजों के निर्यात नियंत्रण से जुड़े प्रविधानों की मियाद नवंबर में खत्म हो रही है। ऐसे में अगर ट्रंप के साथ कोई सहमति नहीं बन पाती, तो बीजिंग इन दुर्लभ खनिजों पर अपना शिकंजा और कस सकता है, जिनकी आवश्यकता आज कारों से लेकर पनडुब्बियों के निर्माण में महत्वपूर्ण होती जा रही है। चीन की बढ़ी ताकत के उलट ट्रंप के दौर में अमेरिकी ताकत घटी है, जिसके पीछे कई कारण रहे हैं।

एक बड़ी वजह तो पिछले साल चीन के साथ छेड़ा गया व्यापार युद्ध था, जिसमें चीन ने दुर्लभ खनिजों को एक हथियार बना लिया और अमेरिका को व्यावहारिक रूप से मात खानी पड़ी। वहीं, ईरान के साथ युद्ध ने अमेरिकी हथियारों के जखीरे को इस कदर खाली कर दिया कि ताइवान की रक्षा करने या प्रशांत क्षेत्र अथवा पश्चिम एशिया में अपनी सैन्य ताकत का लोहा मनवाने की अमेरिकी क्षमता ही कुंद पड़ गई। इस दौरान सहयोगियों को नाराज एवं अलग-थलग तक किया गया। इन सबने मिलकर वैश्विक पटल पर अमेरिकी साख पर बट्टा लगाया है और दुनिया भर में उसके प्रभाव एवं साफ्ट पावर को गहरा आघात पहुंचाया।

वैश्विक पटल पर ट्रंप की छवि मुख्य रूप से एक लापरवाह और अप्रत्याशित नेता की बन चुकी है। इसके विपरीत चिनफिंग ने स्वयं को एक परिपक्व नेता के रूप में स्थापित करने के प्रयास किए हैं। उन्होंने वैश्विक

ऊर्जा बाजार में स्थिरता बहाल करने के जतन किए, जो ईरान के विरुद्ध ट्रंप के सैन्य अभियान से अस्थिर हो गया था। राकफेलर फाउंडेशन के एक ताजा जनमत सर्वेक्षण के निष्कर्ष रेखांकित करते हैं कि कनाडाई, इंडोनेशियाई, ब्राजीलियाई, तुर्क और मैक्सिकन नागरिक अब रूस अथवा चीन की अपेक्षा अमेरिका को अपने लिए अधिक 'गंभीर खतरे' के रूप में देखते हैं।

अमेरिकी इतिहासकार फिलिप्स ओ'ब्रायन ने इसी माह लिखा, 'अमेरिका रणनीतिक रूप से पिछड़ रहा है। वह संवेदनशील एवं सामरिक महत्व के अपने सैन्य ठिकानों को ध्वस्त होते देख रहा है और उनकी रक्षा में लाचार दिखता है। वह उन सहयोगी राष्ट्रों को भी उनके हाल पर छोड़ रहा है, जो अब तक उसकी प्राथमिकताओं में शीर्ष पर थे। यह रुझान दर्शाता है कि वैश्विक पटल पर बेहद महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी वह अपने सामरिक हितों की रक्षा में पूरी तरह असमर्थ दिख रहा है।' ओ'ब्रायन ने यह भी जोड़ा कि "यह निसंदेह अमेरिकी युग का अवसान है, लेकिन मैं इसे लेकर पूरी तरह आश्वस्त नहीं हूं।

आज भी अमेरिका के पास अद्वितीय सामर्थ्य है, विशेष रूप से प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उसका कोई सानी नहीं है। दूसरी तरफ चीन, यूरोप और जापान अपने स्तर पर गंभीर जनसांख्यिकीय असंतुलन तथा आर्थिक संकटों जैसी आंतरिक विसंगतियों से जूझ रहे हैं। अपने भारी प्रोपेगंडा के बावजूद चीन आज भी एक दमनकारी सत्ता केंद्र बना हुआ है, जहां चिनफिंग के बाद किसी उत्तराधिकारी का दूर-दूर तक कोई संकेत नहीं दिखता। इसके विपरीत, इसकी प्रबल संभावना है कि नवंबर के चुनावों में अमेरिकी लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनी दृढ़ता और लचीलेपन का प्रभावी प्रदर्शन करेगी।

चिनफिंग और ट्रंप, दोनों ही इस समय द्विपक्षीय तनाव की तपिश घटाने तथा संबंधों में स्थायित्व लाने के पक्षधर प्रतीत होते हैं। आशा है कि यह स्थिति आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस यानी एआई जैसी तकनीक के संदर्भ में सीमित ही सही, किंतु किसी सार्थक प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी। यदि अमेरिका और चीन एआई सुरक्षा के प्रश्न पर परस्पर सहयोग से कन्नी काटते हैं, तो वैश्विक स्तर पर एआई के किसी प्रभावी नियामकीय ढांचे में उल्लेखनीय प्रगति की उम्मीद बेमानी होगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

**Date: 25-09-26**

# स्वतंत्रता का प्रश्न

**संपादकीय**

भारतीय लोकतंत्र के बुनियादी संचालन में मदद करने वाली संस्था जिस तरह से काम कर रही है यह अलोकतांत्रिक और कुछ मामलों में कानून से परे भी नजर आ रहा है। द इंडियन एक्सप्रेस की एक विस्तृत पड़ताल से पता चला है कि विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) की विश्वसनीयता को लेकर आम लोगों में जो आशंकाएं थीं उनकी गूंज भारत निर्वाचन आयोग (ईसीआई) के भीतर भी सुनाई दे रही थी। देश के तीन चुनाव आयुक्तों में से दो की शिकायत है कि मुख्य चुनाव आयुक्त (सीईसी) ज्ञानेश कुमार ने महत्त्वपूर्ण कदमों के बारे में उन्हें सूचित नहीं किया। इनमें नए मतदाताओं का पंजीकरण, नामों को हटाना, मतदाता डेटाबेस का केंद्रीकृत स्वरूप और सॉफ्टवेयर की विश्वसनीयता जैसे मुद्दे शामिल हैं।

असहमत चुनाव आयुक्तों सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी ने अपनी शिकायतें कैबिनेट सचिव तक भी पहुंचाई। रिपोर्ट से पता चलता है कि दोनों चुनाव आयुक्तों ने पिछले 10 महीनों में कम से कम 14 बार अपनी आपत्तियां आधिकारिक तौर पर दर्ज कराई। इनमें मुख्य चुनाव आयुक्त के समक्ष की गई आपत्तियां भी शामिल हैं। कानूनन तीनों चुनाव आयुक्तों के पास समान अधिकार हैं। हालांकि मुख्य चुनाव आयुक्त को 'बराबरी वालों में प्रथम' माना जाता है लेकिन वे एकतरफा फैसले नहीं ले सकते। 30 जून 2025 को बिहार से शुरू हुए नवीनतम अभिवान के तहत अब तक 13 करोड़ नाम मतदाता सूचियों से हटा दिए गए हैं। दोनों असहमत चुनाव आयुक्तों ने इस प्रक्रिया में कई विसंगतियों की ओर संकेत किया जिनके चलते मतदाताओं को जोड़ने के बजाय नाम हटाना ही सामान्य प्रक्रिया बन गया। इनमें से एक फॉर्म-6 में नया प्रावधान है। जिसका इस्तेमाल नए मतदाताओं के पंजीकरण के लिए होता है। इसके तहत आवेदकों को यह बताना अनिवार्य किया गया है कि उनके माता- पिता या दादा-दादी के नाम पहले की मतदाता सूचियों में दर्ज थे या नहीं। यह जानकारी भरे बिना आवेदक आगे की प्रक्रिया पूरी नहीं कर सकते। दोनों चुनाव आयुक्तों ने चेतावनी दी थी कि संबंधित नियमों में सरकार द्वारा संशोधन किए बिना यह प्रावधान नहीं जोड़ा जा सकता, लेकिन इसके बावजूद बदलाव लागू कर दिया गया।

इसी तरह गंभीर मुद्दा मतदाता सूचियों के डेटाबेस का केंद्रीकरण है। इससे निर्वाचक पंजीकरण अधिकारी की पहुंच कमजोर हुई है। निर्वाचक पंजीकरण अधिकारी जमीनी स्तर पर एक वैधानिक प्राधिकरण है और मतदाता सूचियों की शुचिता बनाए रखने में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। केंद्रीकृत सॉफ्टवेयर ने कई बार इन अधिकारियों के फैसलों को पलट दिवा और पात्र मतदाताओं को मतदान के अधिकार से वंचित कर दिया। वहीं आईटी महानिदेशक को निर्वाचक पंजीकरण अधिकारियों की पहुंच सीमित करने का अधिकार दिया गया है।

सॉफ्टवेयर से जुड़ी इन समस्याओं के चलते अन्य बातों के अलावा पात्र मतदाता अपने मताधिकार से वंचित हुए हैं। संधू और जोशी ने पात्र मतदाताओं के नाम हटाने के लिए दाखिल की गई अपीलों की विश्वसनीयता पर भी सवाल उठाए। वास्तव में इस महीने की शुरुआत में झारखंड में बूथ स्तर के अधिकारियों ने बड़ी संख्या में मतदाताओं के नाम हटाने के अनुरोधों को लेकर गंभीर आपत्तियां दर्ज कराई थीं। एसआईआर प्रक्रिया की अनियमित प्रकृति पश्चिम बंगाल से ज्यादा कहीं भी स्पष्ट नहीं होती जहां मतदाता सूचियों में करीब 12 फीसदी की कमी आई है। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर गठित अपील पंचाटों के समक्ष लबित 38 लाख अपीलों में से पिछले पांच महीनों में केवल 1,26,194 अपीलों का निपटारा हुआ है। इस गति से सभी मामलों को निपटाने में 12 वर्ष लग जाएंगे।

इसके केंद्र में संस्थागत स्वतंत्रता का सवाल है जो चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति प्रक्रिया से जुड़ता है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायाधीश और लोक सभा में विपक्ष के नेता वाली तीन सदस्यीय समिति का सुझाव दिया था। लेकिन कानून में मुख्य न्यायाधीश की जगह प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्रीय मंत्री को शामिल कर दिया गया जिससे संतुलन सरकार के पक्ष में झुक गया। कम से कम दो चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति को लेकर लोक सभा में विपक्ष के नेता की आपत्तियों को भी इसी व्यवस्था के तहत दरकिनार कर दिया गया। चुनाव आयोग में नियुक्ति से संबंधित कानून को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर सुनवाई कर रही दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस मामले की सुनवाई बड़े पीठ से कराने की सिफारिश की है। तब तक सरकार को यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि लोकतंत्र की वे अदृश्य सुरक्षा व्यवस्थाएं जो उसकी संस्थाओं को संतुलित और स्वतंत्र बनाए रखती हैं, भीतर से कमजोर नहीं होने पाएं।

---

***Date: 25-09-26***

# यूपीआई लेनदेन शुल्क और राजनीतिक पूंजी का सवाल

**एके भट्टाचार्य**

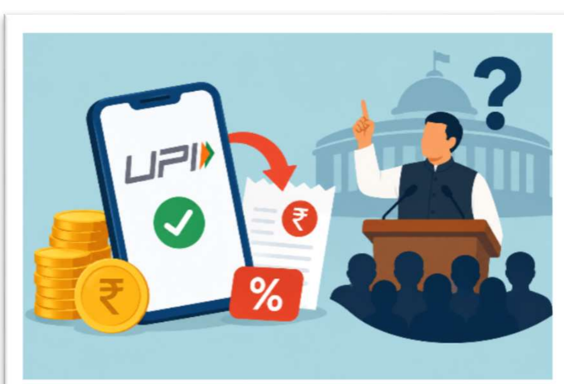


सरकार द्वारा यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (यूपीआई) के माध्यम से किए जाने वाले कुछ लेनदेन पर शुल्क या मर्चेंट डिस्काउंट रेट (एमडीआर) लगाने का फैसला क्यों और कैसे लिया गया, इस पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएं आई हैं। सरकार के मुताबिक यह शुल्क बहुत मामूली होगा जो लेनदेन की संख्या के लिहाज से बहुत छोटे हिस्से पर ही लागू होगा। लोगों के आपसी लेनदेन को इस शुल्क से छूट दी जाएगी। यह शुल्क यूपीआई संचालकों को उस लागत की भरपाई करने में मदद करने के लिए जरूरी

है जो वे इस डिजिटल सार्वजनिक व्यवस्था के संचालन, सुरक्षा और इसे तकनीकी रूप से अद्यतन रखने के लिए वहन करते हैं।

शुल्क का विरोध करने वालों में देश की कुछ प्रभावशाली राजनीतिक आवाजें भी शामिल हैं। उनका तर्क है कि शुल्क नहीं लगने के कारण यूपीआई भुगतान तेजी से बढ़े हैं। वे लोगों के लिए सुविधाजनक हैं और इस भुगतान प्रणाली ने लोगों को नकदी के इस्तेमाल से दूर जाने के लिए प्रोत्साहित किया है। इससे अर्थव्यवस्था को औपचारिक बनाने में मदद मिली है।

उनके मुताबिक यूपीआई के बढ़ते इस्तेमाल ने बिना नकदी के तत्काल भुगतान की वैश्विक व्यवस्था में भारत के एक मजबूत भागीदार के रूप में उभरने का संकेत दिया है। इस सुविधा को अब तक 11 देशों ने अपनाया है और उम्मीद है कि आने वाले समय में और देश भी इसे अपनाएंगे। शुल्क के विरोधियों का यह भी तर्क है कि यूपीआई भुगतान को एमडीआर से मुक्त रखने से यह व्यवस्था तेजी से विस्तार कर सकती है और इससे होने वाले आर्थिक लाभ सरकार पर पड़ने वाली सब्सिडी की लागत से कहीं अधिक हो सकते हैं।

क्या सरकार का आकलन गलत है और उसने अनुचित निर्णय लिया है? इसका जवाब जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि इस बहस और विवाद की प्रकृति क्या है। महत्त्वपूर्ण यह भी है कि मौजूदा बहस को हाल के अतीत में हुए इसी तरह के विवादों से तुलना करते हुए वर्तमान राजनीतिक संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इस बहस को दो नजरियों से देखा जाना चाहिए। आर्थिक नीति और राजनीतिक अर्थव्यवस्था। आर्थिक नीति के फैसले के तौर पर देखें तो यूपीआई लेनदेन पर मामूली शुल्क लगाने के सरकार के विचार में व्यावहारिक रूप से कुछ भी गलत नहीं है।

याद रखें कि अप्रैल 2016 में यूपीआई की शुरुआत से लेकर दिसंबर 2019 तक ऐसे लेनदेन पर शुल्क लगाया जाता था। मोदी सरकार ने लोकप्रियता बढ़ाने और यूपीआई को अधिक व्यापक रूप से अपनाने के उद्देश्य से जनवरी 2020 से इसे शुल्क-मुक्त करने का फैसला किया था। यह फैसला कोविड महामारी से पहले लिया गया था लेकिन महामारी के दौरान और उसके बाद यूपीआई का इस्तेमाल तेजी से बढ़ा। बीते छह साल की अवधि में सरकार ने भुगतान व्यवस्था को सब्सिडी देने पर लगभग 12,000 करोड़ रुपये खर्च किए हैं।

आर्थिक नजरिये से देखें तो भुगतान प्रणाली को सब्सिडी जारी रखना न तो तार्किक दिखाई देता है और न ही इसे उचित ठहराया जा सकता है। हर सार्वजनिक वस्तु के लिए सब्सिडी देना जरूरी नहीं है और ऐसी सेवाओं पर चयनात्मक रूप से शुल्क लगाना असामान्य या आपत्तिजनक नहीं है। इस तर्क में भी कोई खास दम नहीं है कि रिजर्व बैंक को आगे आकर अपने सालाना अधिशेष के एक छोटे हिस्से का इस्तेमाल यूपीआई के संचालन और रखरखाव पर होने वाले खर्च को पूरा करने के लिए करना चाहिए।

यूपीआई भुगतान पर एमडीआर लगाने के फैसले का राजनीतिक अर्थव्यवस्था के नजरिये से मूल्यांकन करने पर तस्वीर थोड़ी अलग दिखाई देती है। हाल के वर्षों में सरकारें राजनीतिक विरोध की आशंका के चलते कठिन

आर्थिक फैसले लेने से बचती रही हैं। मनमोहन सिंह सरकार ने बहु-ब्रांड खुदरा क्षेत्र में 51 फीसदी विदेशी हिस्सेदारी की अनुमति दी थी लेकिन राजनीतिक दबाव के आगे झुकते हुए इस फैसले को उन राज्यों की सहमति के अधीन कर दिया जहां ऐसे विदेशी निवेश होने थे। नरेंद्र मोदी सरकार ने भी इसी सिद्धांत का अनुसरण किया और बहु-ब्रांड खुदरा क्षेत्र में किसी भी विदेशी निवेश की अनुमति देने से पहले कुछ और शर्तें जोड़ दीं।

राजनीतिक विरोध के कारण मोदी सरकार को अपनी कुछ महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को ठंडे बस्ते में डालना पड़ा। इनमें 2013 के भूमि अधिग्रहण कानून के प्रावधानों को उदार बनाने तथा कृषि कानूनों में सुधार कर किसानों के लिए बाजार तक आसान पहुंच सुनिश्चित करने, अनुबंधित खेती को सुगम बनाने और आवश्यक वस्तु कानून के तहत नियंत्रणों को आसान करने के प्रयास शामिल थे। इन सभी कदमों के पीछे मजबूत आर्थिक तर्क था लेकिन राजनीतिक विरोध के कारण वे आगे नहीं बढ़ सके।

इसी प्रकार यूपीआई लेनदेन पर एमडीआर लगाने के फैसले के पीछे भी मजबूत आर्थिक तर्क है। हालांकि इस बात को लेकर उचित चिंताएं हैं कि सरकार ने इस फैसले को लागू करने के लिए ऐसा माहौल क्यों नहीं तैयार किया जिसमें पहले व्यापक विचार-विमर्श किया जाता और उन हितधारकों जैसे व्यापारी संगठनों को विश्वास में लिया जाता जो इस फैसले से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकते हैं।

दिलचस्प बात यह है कि मोदी सरकार ने संभावित राजनीतिक चुनौतियों के बावजूद एमडीआर लागू करने का फैसला आगे बढ़ाया है। इसलिए बहस का मुद्दा एमडीआर के फैसले के पीछे का आर्थिक तर्क नहीं होना चाहिए। इसके बजाय बहस इस फैसले के राजनीतिक औचित्य को लेकर होनी चाहिए। पिछले कई वर्षों में मोदी सरकार ने ऐसे आर्थिक फैसलों पर अपनी मजबूत राजनीतिक पूंजी खर्च करने में हिचकिचाहट दिखाई है जो उसके प्रमुख समर्थक वर्गों को कुछ हद तक अप्रिय लग सकते थे।

भूमि अधिग्रहण के नियमों और कृषि कानूनों में सुधार टाल दिए गए। श्रम कानूनों में सुधार संबंधी कानून बनने के करीब पांच साल बाद उन्हें अधिसूचित किया गया। कर्मचारी भविष्य निधि योजना के तहत अनिवार्य सामाजिक सुरक्षा लाभों का दायरा 14 साल बाद बढ़ाया गया। मोदी सरकार ने कई क्षेत्रों में सुधारों से जुड़े अनेक फैसले लिए हैं। लेकिन ऐसे सुधारों से उसने या तो परहेज किया है या उन्हें धीरे-धीरे आगे बढ़ाया है, जिनसे उसकी राजनीतिक पूंजी को संभावित नुकसान पहुंचने का खतरा हो सकता था।

यूपीआई लेनदेन पर शुल्क लगाने के सरकार के फैसले में जो बात सबसे अधिक ध्यान खींचती है वह है राजनीतिक पूंजी को जोखिम में डालने की उसकी इच्छा। पहले ऐसे किसी भी फैसले से बचने के विपरीत, जिससे दुकानदारों का एक बड़ा वर्ग नाराज हो सकता था, सरकार अब ऐसे शुल्क लगाने के विचार को आगे बढ़ाती दिखाई दे रही है जिससे छोटे व्यापारियों के बड़े हिस्से में नाराजगी पैदा हो सकती है।

ध्यान रहे कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आर्थिक और सांस्कृतिक संगठन स्वदेशी जागरण मंच ने यूपीआई लेनदेन पर शुल्क लगाने के इस कदम का सार्वजनिक रूप से कड़ा विरोध किया है। अब तक मोदी सरकार ने फैसले को वापस लेने के कोई संकेत नहीं दिए हैं। यदि तय कार्यक्रम के अनुसार नए एमडीआर की व्यवस्था अगले महीने के मध्य से लागू होती है, तो आर्थिक नीति के किसी मुद्दे पर यह भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) सरकार के सबसे साहसिक राजनीतिक कदमों में से एक माना जा सकता है। यह इस बात का संकेत भी होगा कि सरकार अपने प्रमुख समर्थक वर्गों में से एक से मिलने वाली राजनीतिक पूंजी के क्षरण को लेकर पहले की तुलना में कम चिंतित है।

यदि सरकार इस फैसले की समीक्षा करती है तो यह एक बार फिर दिखाएगा कि खुदरा व्यापार अब भी भाजपा के लिए एक संवेदनशील क्षेत्र है। साथ ही, इससे यह संकेत भी मिलेगा कि सरकार इस वर्ग से मिलने वाली अपनी राजनीतिक पूंजी को और मजबूत करने के लिए किस दिशा में आगे बढ़ना चाहती है। दोनों ही परिस्थितियों में एमडीआर के मुद्दे से जुड़े राजनीतिक विचार इसके पीछे मौजूद आर्थिक तर्क पर हावी रहेंगे।

---

जनसत्ता

*Date: 25-09-26*

# साख पर सवाल

**संपादकीय**

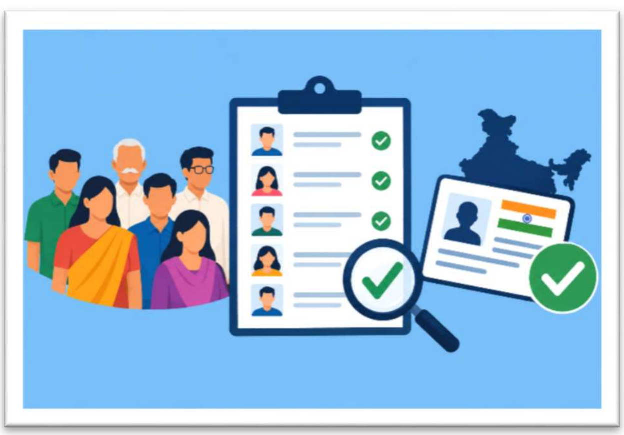

इसमें कोई दोराय नहीं कि मतदाता सूची में सिर्फ पात्र मतदाताओं और वैध नागरिकों के ही नाम होने चाहिए, ताकि चुनाव प्रक्रिया की शुचिता सुनिश्चित की जा सके। एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए यह जरूरी भी है। मगर इसके लिए निर्वाचन आयोग ने जिस विशेष मतदाता सूची के गहन पुनरीक्षण यानी एसआइआर की प्रक्रिया को एक अभियान की तरह चलाया है, वह अपनी शुरुआत से ही सवालों के घेरे में रहा। बिहार, पश्चिम बंगाल और अन्य राज्यों में जिस तरह लाखों मतदाताओं को सूची से अलग-अलग कारणों से बाहर कर दिया गया, उसकी कसौटियां और औचित्य को लेकर विवाद जारी हैं।

ऐसी आपत्तियां न केवल विपक्षी दलों की ओर से सामने आईं, बल्कि खुद चुनाव आयोग से जुड़े रहे पूर्व शीर्ष अधिकारियों ने भी इस पर कई सवाल उठाए हैं। मसलन, पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त ओपी रावत ने

एसआइआर को एक ऐसी व्यवस्था करार दिया है, जिसने मतदाताओं के मन में डर पैदा कर दिया है। उनके मुताबिक, वैधानिक मतदाता पंजीकरण प्रपत्र-6 में किए गए बदलाव पूरी तरह गलत और अवैध हैं। खबरों के मुताबिक, मौजूदा तीन सदस्यीय चुनाव आयोग के दो सदस्यों ने भी पिछले दस महीनों में कम से कम चौदह बार मतदाताओं के पंजीकरण और नाम हटाने को लेकर प्रपत्र-6 में बदलाव तथा मतदाता सूची के डेटाबेस पर नियंत्रण को केंद्रीकृत करने पर आपत्ति दर्ज की।

सवाल है कि जब खुद चुनाव संचालित करने वाले कुछ पूर्व और वर्तमान उच्च अधिकारी भी यह मान रहे हैं कि निर्वाचन आयोग जिस एसआइआर को मतदाता सूची का शुद्धिकरण बता रहा है, उसकी प्रक्रिया औचित्य के कठघरे में है, तो इसकी क्या विश्वसनीयता रह जाती है। इसी से संबंधित एक सवाल पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त वाईएस कुरैशी ने भी उठाया है कि क्या कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण पुनरीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से तैयार की गई मतदाता सूचियों के आधार पर चुनाव कराए जा सकते हैं। जाहिर है, यह एक बड़े महत्त्व का सवाल है। मगर हकीकत यह है कि विपक्षी दलों की ओर से भी इसी तरह की आपत्ति दर्ज कराए जाने के बावजूद निर्वाचन आयोग ने कई राज्यों में विधानसभा चुनाव कराए।

पश्चिम बंगाल में विवाद के तूल पकड़ने के बाद मतदाता सूची में नाम फिर से शामिल कराने के लिए अपीलीय न्यायाधिकरणों में अपील की व्यवस्था की गई। वहां हालत यह है कि अब तक जितने मामलों का निपटारा हो सका है, उनमें से करीब नब्बे फीसद लोगों के नाम फिर से मतदाता सूची में शामिल किए गए। जाहिर है, ये लोग वैसे मतदाता हैं, जिन्हें विधानसभा चुनावों में मत डालने का अधिकार नहीं मिला।

सवाल है कि ऐसे लाखों मतदाताओं के मतदान के हक से वंचित होने की जिम्मेदारी किसकी है! इसी क्रम में मौजूदा दो निर्वाचन आयुक्तों ने भी जिस तरह के सवाल उठाए हैं, उससे वास्तव में आयोग की साख अब कसौटी पर है। यह बेवजह नहीं है कि राज्यों में लाखों मतदाताओं को बाहर करके आयोजित कराए गए चुनावों के नतीजों को भी अब संदिग्ध बताया जाने लगा है।

यह ध्यान रखने की जरूरत है कि स्वच्छ मतदान ही देश के लोकतंत्र का आधार रहा है। अगर अपात्र नागरिकों को मतदाता सूची से बाहर करने के नाम पर चलाए गए अभियान का चुनावी नतीजों पर असर पड़ता है और उसमें पड़ा उलट-फेर होता है, तब सवाल लाजिमी हो जाता है कि फिर निर्वाचन आयोग की ओर से एसआइआर के अभियान का क्या मकसद है। ऐसा क्यों है कि न सिर्फ तमाम विपक्षी दल और उनके नेता, बल्कि खुद चुनाव आयोग के कुछ पूर्व शीर्ष अधिकारी भी एसआइआर को लेकर सवाल उठा रहे हैं। इसकी अनदेखी न केवल लाखों मतदाताओं को मतदान के हक से वंचित करने की वजह बनेगी, बल्कि इससे दूरगामी स्तर पर लोकतंत्र का जीवन प्रभावित होगा।

Live हिन्दुस्तान.com

*Date: 25-09-26*

# घेरे में चुनाव आयोग

**संपादकीय**

भारतीय चुनाव आयोग का एक बार फिर गंभीर विवादों में उलझना अफसोसजनक है। आयोग पर आलोचनाओं की बौछारें हो रही हैं। विपक्ष तरह-तरह के आरोपों के साथ जिस तरह से आक्रामक हुआ है, उसे समझना कठिन नहीं है। मतदाता सूची पुनरीक्षण विवाद की एक बड़ी वजह है और बीते महीनों में इससे जुड़े करीब 40 ऐसे फैसले हैं, जिनसे आयोग के कामकाज में बदलाव आए होंगे। आयोग में आयुक्तों के बीच परस्पर समन्वय के अभाव से चिंता बढ़ गई है। हालांकि, जब किसी आयोग में तीन सदस्य होंगे, वहां असहमति की आशंका से कभी इनकार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, मुख्य चुनाव आयुक्त में इतनी व्यावहारिक बढ़त होती है कि वह आयोग के फैसले को अपने ढंग से प्रभावित कर सकता है। मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार ने भी कुछ फैसलों को प्रभावित किया हो, तो आश्चर्य नहीं। अब जब अनेक शिकायतें चर्चा में हैं, तब सच-झूठ की पड़ताल होनी चाहिए, लेकिन इसका तरीका क्या होगा? कौन करेगा पड़ताल ? क्या आयोग के ऊपर भी कोई संस्था है? क्या सर्वोच्च न्यायालय जांच करा सकता है? कोई दोराय नहीं, संविधान के दायरे में चुनाव आयोग के कामकाज को नई रोशनी में परखने के लिए हर मुमकिन कदम उठने चाहिए।

सवाल मुख्य चुनाव आयुक्त के साथ ही, अन्य दो चुनाव आयुक्तों की अब तक चुप्पी पर भी उठ सकते हैं। विपक्षी दल लगातार शिकायतें करते आ रहे हैं, उनकी शिकायतें भले ही उन राज्यों में हुए चुनावों को लेकर होंगी, जहां उन्हें हार का सामना करना पड़ा है, फिर भी उनके आरोपों की जांच का वक्त आ गया है। चुनाव आयोग के प्रति देश-दुनिया में जो अविश्वास का माहौल बना है, उसे जल्द से जल्द दूर करने की जरूरत है। स्वयं मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार के लिए यह विवादित स्थिति त्रासद है। सबसे अच्छा तो यही होगा कि मुख्य चुनाव आयुक्त एक-एक आरोप का प्रमाण के साथ जवाब दें। पुनरीक्षण के संबंध में अगर परंपरा से हटकर फैसले लिए गए हैं, तो उनकी जरूरत देश को समझ में आनी चाहिए। इतना तो तय है कि ज्ञानेश कुमार अगर जवाबदेही सुनिश्चित नहीं करेंगे, तो विपक्ष की आक्रामक दिनोंदिन बढ़ती चली जाएगी। राहुल गांधी के तीखे आरोपों और उस पर भाजपा के दोटूक जवाब से ही समाधान नहीं हो पाएगा। बिगड़ते हालात को आयोग मामूली न माने। वह स्वयं आगे आकर ऐसी तल्ख सियासत को रोके, तो ज्यादा बेहतर होगा।

बेशक, समय के साथ चुनाव आयोग के कामकाज में सुधार हुए हैं। पहले किस तरह से आयुक्त चुने जाते थे और चुनावी अनियमितता की कितनी शिकायतें आती थीं, उनके विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है। अब देश को एक निष्पक्ष, सशक्त चुनाव आयोग चाहिए और इसे कैसे सुनिश्चित किया जाएगा, केवल इस दिशा में कदम उठने चाहिए। हमारी व्यवस्था में ऐसे अधिकारियों के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए, जिनमें

पारदर्शिता का अभाव है। आयुक्तों ने अनेक आवश्यक फैसलों में देरी की है, जिसकी कीमत देश की कुछ पार्टियां और उसके नेता चुका रहे हैं। चुनाव आयोग सबके लिए है, लेकिन उस पर विपक्ष का विश्वास सबसे जरूरी है। आज जो हो रहा है, उसकी आशंकाएं पहले से थीं। आयोग के इतिहास में यह जरूर लिखा जाएगा कि पुनरीक्षण का काम समय लेकर सावधानी से होना चाहिए था, लेकिन आनन-फानन में हुए कार्य के नतीजे अब सबके सामने हैं। खैर, अब पूरी सक्रियता दिखाते हुए, आयोग और लोकतंत्र की साख की चिंता करनी चाहिए।

---

***Date: 25-09-26***

# पुराने संबंधो से नया समूह बनाता भारत

**शशांक, ( पूर्व विदेश सचिव )**

विदेश मंत्री एस जयशंकर का न्यूयॉर्क दौरा महज संयुक्त राष्ट्र की बैठक तक सीमित नहीं है। वह इसकी 81वीं आमसभा को कल, यानी 26 सितंबर को संबोधित करेंगे, लेकिन इससे पूर्व जिस तरह से वह अनेक देशों के प्रतिनिधियों के साथ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय बैठकें कर रहे हैं, उनके गहरे निहितार्थ हैं। खास तौर पर विसेग्राद समूह (वी4) के साथ पहली बार की गई उच्च स्तरीय बैठक और लातीन अमेरिकी एवं कैरेबियाई देशों के विदेश मंत्रियों (सीईएलएसी) के बीच हुई चर्चा विश्व व्यवस्था के लिए भी अहम है। यह गुटनिरपेक्षता के दौर की भारतीय कूटनीति की याद दिलाता है।सबसे पहले विसेग्राद की बात। यह स्लोवाकिया, पोलैंड, हंगरी और चेक गणराज्य का समूह है, जिसका महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि पश्चिमी दुनिया और बड़ी वैश्विक ताकतों के बीच यह एक नए रणनीतिक-कूटनीतिक प्रवेश द्वार के रूप में काम करता है। अगर इसे एक 'इकोनॉमिक ब्लॉक' के रूप में देखें, तो यह यूरोप की पांचवीं और दुनिया की 12वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। भारतीय विदेश मंत्री के साथ पहली बार इसके प्रतिनिधि बैठे और उन्होंने सुरक्षा परिषद् में भारत की सदस्यता के दावे का खुलेआम समर्थन करके जता दिया कि हिंद-प्रशांत क्षेत्र के उभरते इस 'सुपरपावर' को वे कितना अहम मानते हैं।

इस बैठक में व्यापार और निवेश, तकनीक और नवाचार, आपूर्ति शृंखला, रक्षा-सुरक्षा, कनेक्टिविटी, शिक्षा, लोगों के आपसी संपर्क जैसे कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर आपसी सहयोग बढ़ाने पर विचार किया गया। सुखद है कि जितनी हमें उनकी जरूरत है, उतनी ही उन देशों को हमारी आवश्यकता है। चूंकि हम 'ग्लोबल साउथ' की नेतृत्वकारी भूमिका में हैं और इस क्षेत्र की एक बड़ी आर्थिक व सामरिक ताकत हैं, इसलिए 'वी4+भारत' की संकल्पना इन मध्य यूरोपीय देशों को आर्थिक और अकादमिक क्षेत्रों में लाभ पहुंचा सकती है। दोनों पक्ष राजनीतिक, आर्थिक, तकनीकी और रक्षा सहयोग को और गहरा बनाने पर सहमत भी हुए हैं।

रही बात भारत की, तो वी4 देशों के साथ उसका संबंध मध्य यूरोप से जुड़ने का एक मजबूत जरिया बन सकता है, खासकर ऐसे समय में ,जब यूरोपीय संघ के साथ उसके रिश्ते लगातार मजबूत हो रहे हैं। गौरतलब है, भारत और यूरोपीय संघ के बीच 'एफटीए' संपन्न हो चुका है, जिस पर इस साल के अंत तक हस्ताक्षर होने की उम्मीद है। रक्षा, उन्नत तकनीक, नवाचार, कनेक्टिविटी जैसे क्षेत्रों में वी4 के साथ रिश्ता जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा, संस्थागत सहयोग भी मजबूत होते जाएंगे।यहीं सीईएलएसी की अहमियत विशेष तौर पर बढ़ जाती है। यह 33 देशों का समूह है, जिनमें दुनिया की 60 से 65 करोड़ आबादी बसती है। मगर इसका महत्व इसलिए है, क्योंकि यह 'ग्लोबल साउथ' का अहम हिस्सा है। हां, यह अलग बात है कि विश्व व्यवस्था में इसे अब तक पर्याप्त तवज्जो नहीं मिल सकी है, पर भारत इसकी हमेशा से तरफदारी करता रहा है।

हमारा यह भाव महज सरकारी दस्तावेजों तक सिमटा नहीं है। हम लगातार इस दिशा में प्रयासरत भी हैं। इसी कारण साल 2025-26 में भारत-सीईएलएसी द्विपक्षीय व्यापार 50 अरब डॉलर की सीमा पार कर सका, जो ऐतिहासिक उपलब्धि है। माना जाता है कि आने वाले वर्षों में आपसी व्यापार के कई अन्य रिकॉर्ड बन सकते हैं। दरअसल, फार्मास्यूटिकल्स व दक्ष मानव संसाधन में हमारी गिनती दुनिया के शीर्ष के देशों में होती है, जबकि तकनीक और डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर में भी हम उनको मदद करते हैं। विशाल उपभोक्ता बाजार एक अन्य पहलू है, जिसका लाभ सीईएलएसी को मिलता रहा है।

इसके बरक्स महत्वपूर्ण खनिज, सतत ऊर्जा और कृषि उत्पादों के रूप में हम उससे लाभान्वित होते रहे हैं। जाहिर है, व्यापार, निवेश व व्यावसायिक साझेदारियों में विविधता लाने की दिशा में और अधिक काम करने से 'मजबूत कारोबारी संबंध बन सकते हैं, आपसी संबंध बेहतर होंगे और बाजार तक अधिक पहुंच' सुनिश्चित हो सकेगी। इसका एक अर्थ यह भी है कि संभावनाओं के सूत्र तलाशकर हमें लातीन अमेरिकी देशों के साथ ऐसी मूल्य शृंखला बनानी होगी, जिसमें मैन्युफैक्चरिंग, डिजिटल सेवाएं, तकनीक, अक्षय ऊर्जा, लॉजिस्टिक्स जैसे तमाम आधुनिक ढांचे शामिल होने चाहिए। इसका चौतरफा फायदा मिलेगा।इसी कारण लैटिन अमेरिका के अलग-अलग देशों और क्षेत्रीय समूहों के साथ भी भारत मजबूत व्यापारिक ढांचा विकसित करने की कोशिश कर रहा है। चिली के साथ व्यापक आर्थिक साझेदारी और पेरू के साथ मुक्त व्यापार समझौता करने के साथ-साथ मर्कोसुर के साथ तरजीही व्यापार समझौते के विस्तार की कवायद की जा रही है, जिससे आर्थिक एकीकरण को कहीं अधिक विस्तार मिलेगा।

यह सही है कि 'ग्लोबल साउथ' का हिस्सा एशिया और अफ्रीका के विकासशील व उभरते देश भी हैं और वैश्विक शासन प्रणाली में बदलाव की मांग करके, साझा समस्याओं पर एकजुट रहकर और अपनी आर्थिक ताकत का दम दिखाकर विश्व व्यवस्था में अपने लिए मजबूत हिस्सेदारी की मांग करते रहे हैं, पर इससे लैटिन अमेरिकी व कैरेबियाई देशों का महत्व कम नहीं हो जाता। अलबत्ता, इनका मजबूत होना 'ग्लोबल साउथ' को और सशक्त बनाएगा, जिसका फायदा भारत को मिल सकता है। एक बड़े क्षेत्र का प्रतिनिधित्व आसान दायित्व नहीं होता और अगर विश्व मंच पर 'ग्लोबल साउथ' एक बड़ी ताकत के रूप में स्थापित होता है, तो सुरक्षा परिषद में बदलाव की मांग को टालना विकसित देशों के लिए आसान न होगा।

अच्छी बात यह है कि भारत और सीईएलएसी के लोकतांत्रिक मूल्य और विकास के सपने एक जैसे हैं। विकासशील देशों के हित में दक्षिण-दक्षिण सहयोग को मजबूत करने के लिए दोनों प्रतिबद्ध हैं।

साफ है, भारतीय विदेश मंत्री की न्यूयॉर्क यात्रा औपचारिकता से कहीं अधिक भारत की लैटिन अमेरिकी और कैरेबियाई नीति को नई गति देने वाला साबित हुआ है। द्विपक्षीय और बहुस्तरीय बैठकों से इस मंच को नई ऊर्जा मिली है। बेशक भौगोलिक दूरी के कारण कुछ चुनौतियां हैं, खास तौर से चीन हमें निवेश और व्यापारिक उपस्थिति के मामले में कड़ी प्रतिस्पर्द्धा दे रहा है, लेकिन नई दिल्ली की कूटनीतिक सक्रियता तमाम मुश्किलों का हल निकाल सकती है। आने वाले वर्ष इसकी ठोस मुनादी करेंगे ।